नईदुनिया

संपादकीय

जंगल काटकर विकास नहीं होगा, विकास को जंगलों के बीच से रास्ता निकालना होगा

भारत आज एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है, जहां विकास और पर्यावरण को आमने-सामने खड़ा कर दिया गया है। एक ओर एक्सप्रेस-वे, खनन परियोजनाएं, औद्योगिक कॉरिडोर और नई ऊर्जा परियोजनाएं हैं, तो दूसरी ओर सिकुड़ते जंगल, घटता भूजल, बढ़ता तापमान और लगातार चरम होती प्राकृतिक आपदाएं। सवाल यह नहीं कि विकास हो या पर्यावरण, बल्कि सवाल यह है कि क्या भारत आज भी 50 साल पुराने विकास मॉडल पर चलना चाहता है?

विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न रिपोर्टें बताती हैं कि प्राकृतिक आपदाओं से होने वाला आर्थिक नुकसान लगातार बढ़ रहा है। भारत में हर साल बाढ़, भूस्खलन, हीटवेव और सूखे से हजारों करोड़ रुपये की संपत्ति नष्ट होती है। यह नुकसान किसी पर्यावरणवादी का तर्क नहीं, बल्कि अर्थव्यवस्था पर सीधा बोझ है। यानी पर्यावरण की अनदेखी विकास को ही महंगा बना रही है।

समस्या की जड़ पर्यावरण मंजूरी की प्रक्रिया में भी है। अधिकांश परियोजनाओं में पर्यावरण प्रभाव आकलन (ईआईए) को केवल औपचारिकता मान लिया जाता है। रिपोर्टें अक्सर परियोजना प्रस्तावकों के खर्च पर तैयार होती हैं और स्थानीय समुदायों की आपत्तियां कागजों में दब जाती हैं। परिणाम यह होता है कि सड़कें और बांध बनते हैं, लेकिन कुछ वर्षों बाद भूस्खलन, जलभराव या पारिस्थितिक क्षति के कारण उन्हीं पर अरबों रुपये दोबारा खर्च करने पड़ते हैं। इसका समाधान केवल पेड़ लगाने के सरकारी अभियान नहीं हैं। पहला कदम यह होना चाहिए कि पर्यावरण मंजूरी देने वाली एजेंसियों को पूरी तरह स्वतंत्र बनाया जाए और उनकी रिपोर्ट सार्वजनिक जांच के लिए अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराई जाए। दूसरा, प्रत्येक बड़ी परियोजना के लिए 'नेचर कॉस्ट अकाउंटिंग' लागू हो, जिसमें जंगल, जलस्रोत और जैव विविधता के नुकसान का आर्थिक मूल्य भी परियोजना लागत में जोड़ा जाए। जब पर्यावरणीय क्षति की वास्तविक कीमत सामने आएगी, तब निर्णय अधिक संतुलित होंगे।

तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण समाधान यह है कि विकास परियोजनाओं की सफलता का आकलन केवल निर्माण लागत या समयसीमा से नहीं, बल्कि अगले 20 वर्षों तक उनके पर्यावरणीय प्रभाव से किया जाए। यदि कोई सड़क पांच हजार पेड़ काटकर बनती है, तो उसके साथ वन्यजीव गलियारे, वर्षा जल संरक्षण और स्थानीय हरित क्षेत्र विकसित करना भी कानूनी दायित्व होना चाहिए, न कि कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व का वैकल्पिक हिस्सा।

भारत को आज 'ग्रीन इन्फ्रास्ट्रक्चर' की ओर बढ़ना होगा, जहां इंजीनियरिंग और पारिस्थितिकी साथ चलें। दुनिया के कई देशों ने सुरंगों, एलिवेटेड कॉरिडोर और वन्यजीव ओवरपास के जरिए विकास और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित किया है। भारत में भी यह तकनीकी क्षमता मौजूद है, जरूरत केवल राजनीतिक इच्छाशक्ति और नीति की प्राथमिकता बदलने की है।

विकास का अर्थ केवल कंक्रीट का विस्तार नहीं होता। यदि आने वाली पीढ़ियों को स्वच्छ हवा, सुरक्षित जल और स्थिर जलवायु नहीं मिली, तो आज की चमकदार परियोजनाएं कल की सबसे बड़ी आर्थिक भूल साबित होंगी। असली विकास वही है जो प्रकृति की कीमत पर नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ साझेदारी में आगे बढ़े।

आजकल

नीति आयोग 2.0 नए चेहरे पुरानी तकरार

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में हुई नीति आयोग की 11वीं गवर्निंग काउंसिल बैठक केवल एक औपचारिक बैठक नहीं थी, बल्कि केंद्र-राज्य संबंधों और सहकारी संघवाद की नई परीक्षा भी साबित हुई। पश्चिम बंगाल से शुभेंदु अधिकारी तथा कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल के नए नेतृत्व की मौजूदगी ने यह संकेत दिया कि विपक्षी दल भी संवाद की प्रक्रिया में लौट रहे हैं।

बैठक का सबसे सकारात्मक पक्ष यह रहा कि मुखर विपक्षी राज्यों ने चर्चा की मेज पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। यह सहकारी संघवाद की मूल भावना है। हालांकि, नीट को लेकर उठा विवाद यह भी बताता है कि केवल साथ बैठना पर्याप्त नहीं है। राज्यों की भौगोलिक, सामाजिक और भाषाई परिस्थितियां अलग हैं, इसलिए नीतियों में भी आवश्यक लचीलापन होना चाहिए। तमिलनाडु की मांग है कि यदि नीट से छूट संभव नहीं है तो कम से कम ग्रामीण छात्रों के लिए विशेष व्यवस्था पर विचार किया जाए।

बैठक में यह भी स्पष्ट हुआ कि नीति आयोग अब केवल सुझाव देने वाला थिंक टैंक नहीं, बल्कि संवाद का महत्वपूर्ण मंच बनता जा रहा है। विकसित भारत-2047 के लक्ष्य को लेकर केंद्र ने राज्यों से रोडमैप मांगा है, लेकिन इस लक्ष्य की सफलता वित्तीय सहयोग और आपसी विश्वास पर निर्भर करेगी। गैर-एनडीए शासित राज्यों की यह शिकायत रही है कि योजनाओं के वित्तपोषण और जीएसटी मुआवजे जैसे मुद्दों पर पर्याप्त सहयोग नहीं मिलता।

सहकारी संघवाद केवल बैठकों से मजबूत नहीं होगा, बल्कि राज्यों की वास्तविक चिंताओं को नीति निर्माण में स्थान देने से ही सार्थक बनेगा। 11वीं बैठक ने बहस और संवाद का द्वार जरूर खोला है, लेकिन यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि यह संवाद ठोस समाधान तक पहुंचता है या फिर अगली बैठक में वही मुद्दे दोबारा चर्चा का विषय बनते हैं। विकसित भारत का सपना तभी साकार होगा जब केंद्र और राज्य प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि साझेदार की भूमिका निभाएं।

देश के पांच हजार युवा बनेंगे देशी-विदेशी पर्यटकों के सारथी

भारत को विश्व की पर्यटन राजधानी बनाने का सपना अब केवल पर्यटन मंत्रालय की फाइलों में नहीं, बल्कि ग्वालियर की कक्षाओं में आकार ले रहा है। भारतीय पर्यटन एवं यात्रा प्रबंधन संस्थान (आईआईटीटीएम), ग्वालियर ने देश के पांच शहरों के लिए पांच हजार युवाओं को कल्चरल एंबेसडर बनाने का बीड़ा उठाया है। पहले चरण में दो हजार युवाओं को प्रशिक्षित किया जाएगा। यह पहल केवल रोजगार नहीं देगी, बल्कि 'अतिथि देवो भव' की हजारों वर्ष पुरानी परंपरा को 21वीं सदी के प्रोफेशनलिज्म से भी जोड़ेगी।

अक्सर विदेशी पर्यटक भारत आकर भाषा, स्थानीय संस्कृति और सुरक्षा को लेकर असहज महसूस करते हैं। उन्हें गाइड तो मिल जाता है, लेकिन कई बार वह कमीशन के चक्कर में पर्यटकों को दुकान-दुकान घुमाता रहता है। आईआईटीटीएम की यह योजना इसी छवि को बदलने का प्रयास है। संस्थान के निदेशक प्रो. आलोक शर्मा के अनुसार, ये युवा केवल स्मारकों का इतिहास नहीं बताएंगे, बल्कि स्टोरीटेलर की भूमिका निभाएंगे। ग्वालियर का किला अजेय क्यों माना जाता था, ओरछा के रामराजा मंदिर में भगवान को गार्ड ऑफ ऑनर क्यों दिया जाता है या तानसेन की तान से दीपक जलने की किंवदंतियां क्या हैं, वे इन कथाओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत करेंगे। साथ ही डिजिटल भुगतान, आपातकालीन सहायता, महिला पर्यटकों की सुरक्षा और स्थानीय कानूनों की जानकारी भी देंगे।

पहले चरण में ग्वालियर, खजुराहो, ओरछा, भोपाल और इंदौर के दो हजार युवाओं का चयन किया गया है। दस हजार से अधिक आवेदन प्राप्त हुए थे। तीन माह के प्रशिक्षण कार्यक्रम में इतिहास, कम्युनिकेशन स्किल, फर्स्ट एड, सेल्फ डिफेंस, विदेशी भाषाओं का प्रारंभिक ज्ञान और एआई टूल्स का प्रशिक्षण शामिल होगा। कोर्स पूरा होने पर पर्यटन मंत्रालय का प्रमाणपत्र दिया जाएगा और इन्हें 'इन्क्रेडिबल इंडिया स्मार्ट गाइड' का दर्जा मिलेगा।

इस पहल की आवश्यकता इसलिए भी महसूस हुई क्योंकि भारत की पर्यटन छवि को ओवरचार्जिंग और अव्यवस्थित सेवाओं ने नुकसान पहुंचाया है। वर्ष 2024 में भारत में 1.2 करोड़ विदेशी पर्यटक आए, लेकिन पर्यटन क्षमता के लिहाज से थाईलैंड, दुबई और वियतनाम जैसे देश आगे निकल चुके हैं। दिल्ली एयरपोर्ट पर महंगी टैक्सी, आगरा में नकली संगमरमर और वाराणसी में जबरन दक्षिणा जैसी शिकायतें अक्सर सामने आती रही हैं। एक नकारात्मक अनुभव हजारों संभावित पर्यटकों को प्रभावित करता है। प्रशिक्षित स्थानीय युवा यदि पर्यटक का स्वागत करे, सही होटल उपलब्ध कराए, उचित मूल्य पर खरीदारी कराए और सुरक्षा का भरोसा दिलाए, तो वही पर्यटक भविष्य में और लोगों को भारत आने के लिए प्रेरित करेगा।

पर्यटन क्षेत्र रोजगार का बड़ा स्रोत है। विश्व स्तर पर हर दस में से एक नौकरी पर्यटन से जुड़ी है, जबकि भारत में यह अनुपात अभी लगभग आठ प्रतिशत है। इस योजना से पांच हजार प्रत्यक्ष रोजगार सृजित होंगे, लेकिन इसका प्रभाव इससे कहीं व्यापक होगा। एक संतुष्ट पर्यटक टैक्सी चालक, होटल कर्मचारी, हस्तशिल्पी और रेस्तरां संचालक सहित कई स्थानीय लोगों की आय बढ़ाता है। इस दृष्टि से पांच हजार कल्चरल एंबेसडर हजारों परिवारों की आजीविका से जुड़ सकते हैं।

खजुराहो के राजू कुशवाहा जैसे युवा, जो पहले महानगरों में छोटी नौकरी तलाश रहे थे, अब अपने क्षेत्र में रहकर सम्मानजनक आय अर्जित करने की उम्मीद कर रहे हैं। ओरछा की अंजली रैकवार जैसी युवतियां भी इसे सुरक्षित और सम्मानजनक करियर के रूप में देख रही हैं। इस दृष्टि से यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन और रिवर्स माइग्रेशन को भी बढ़ावा दे सकती है।

हालांकि चुनौतियां भी कम नहीं हैं। तीन माह में उत्कृष्ट गाइड तैयार करना आसान नहीं है। भाषा, व्यवहार और इतिहास पर मजबूत पकड़ जरूरी होगी। इसके लिए आईआईटीटीएम ने आईआईएम इंदौर और टीसीएस के सहयोग से एआई आधारित प्रशिक्षण मॉड्यूल विकसित करने की पहल की है। दूसरी चुनौती स्थानीय गाइड सिंडिकेट और दलाल तंत्र की है, जिससे निपटने के लिए पर्यटन मंत्रालय स्मार्ट गाइड ऐप लाने की तैयारी कर रहा है। इसके माध्यम से पर्यटक सीधे प्रमाणित एंबेसडर बुक कर सकेंगे, निर्धारित शुल्क पर डिजिटल भुगतान होगा और पारदर्शिता बढ़ेगी।

भविष्य की योजना 2028 तक 50 शहरों में 50 हजार कल्चरल एंबेसडर तैयार करने की है। अगले चरण में वाराणसी, बोधगया, उदयपुर, हम्पी और कोणार्क जैसे प्रमुख पर्यटन स्थलों को शामिल किया जाएगा। 'देखो अपना देश' अभियान के तहत घरेलू पर्यटकों को भी इन सेवाओं का लाभ मिलेगा। इसके साथ ही महिला पर्यटकों की सुविधा के लिए 40 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित रखने तथा हेरिटेज, वाइल्डलाइफ, एडवेंचर और फूड टूरिज्म जैसे विषय आधारित विशेषज्ञ एंबेसडर तैयार करने की भी योजना है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा है कि पर्यटन आतंकवाद को परास्त कर सकता है, लेकिन पर्यटन तभी बढ़ेगा जब पर्यटक को ठगी नहीं, अपनापन मिलेगा। ग्वालियर की यह पहल उसी अपनत्व को पेशेवर स्वरूप देने का प्रयास है। ये पांच हजार युवा केवल गाइड नहीं, बल्कि भारत की सॉफ्ट पावर के प्रतिनिधि होंगे। जब ओरछा का युवा किसी विदेशी पर्यटक को बेतवा को आरती का अनुभव कराएगा या खजुराहो की युवती किसी विदेशी शोधकर्ता को चंदेल कला की व्याख्या करेगी, तब भारत की पहचान केवल स्मारकों से नहीं, बल्कि अपने आत्मीय व्यवहार से बनेगी। 'अतिथि देवो भव' तब केवल नारा नहीं, बल्कि रोजगार, जिम्मेदारी और राष्ट्रीय पहचान का सशक्त माध्यम बन जाएगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

रिश्तेदारी का ताला टूटा, पारदर्शिता का दरवाजा खुला

पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग ने स्पष्ट किया है कि सचिव और सरपंच के बीच खून का रिश्ता, वैवाहिक संबंध या निकट संबंध नहीं होना चाहिए। यदि चुनाव के बाद ऐसा संबंध बनता है तो 15 दिन के भीतर सचिव का तबादला किया जाएगा। इस व्यवस्था का पहला प्रभाव जवाबदेही पर दिखाई दे सकता है। जब सचिव सरपंच का रिश्तेदार नहीं होगा तो किसी गलत निर्णय पर हस्ताक्षर करने से पहले अधिक सावधानी बरतेगा। पंचायत में चेक एंड बैलेंस की व्यवस्था मजबूत होगी। गरीब और जरूरतमंद व्यक्ति भी बिना राजनीतिक दबाव के अपनी समस्या सचिव तक पहुंचा सकेगा।

गांव की सरकार यानी पंचायत अब भाई-भतीजावाद के दाग से मुक्त होने जा रही है। मध्यप्रदेश सरकार ने नई गाइडलाइन जारी कर साफ कर दिया है कि अब पंचायत में सचिव के पद पर सरपंच या उपसरपंच के रिश्तेदार नहीं बैठ पाएंगे। यदि कोई सचिव पहले से पद पर है और बाद में उसके परिवार का सदस्य सरपंच बन जाता है तो सचिव का तबादला कर दिया जाएगा। यह फैसला केवल एक प्रशासनिक नियम नहीं, बल्कि ग्रामीण लोकतंत्र की रीढ़ को मजबूत करने का प्रयास है।

पंचायत सचिव पूरे ग्राम पंचायत का प्रशासनिक केंद्र होता है। 14वें और 15वें वित्त आयोग की राशि, मनरेगा भुगतान, जन्म-मृत्यु प्रमाणपत्र, प्रधानमंत्री आवास योजना की सूची और राशन पात्रता जैसी लगभग हर महत्वपूर्ण फाइल सचिव के हस्ताक्षर से गुजरती है। सरपंच नीतिगत मुखिया होता है, लेकिन प्रशासनिक व्यवस्था सचिव के हाथ में होती है। अब तक कई जगहों पर सरपंच अपने बेटे, भतीजे, दामाद या अन्य रिश्तेदार को सचिव बनवा देते थे और फिर पंचायत का संचालन निजी हितों के अनुसार होता था। पात्रता सूची से लेकर मनरेगा और निर्माण कार्यों तक में पक्षपात और अनियमितताओं की शिकायतें आम थीं। शिकायत करने पर जिम्मेदारी एक-दूसरे पर डाल दी जाती थी और आम नागरिक चक्कर काटता रह जाता था।

नई गाइडलाइन ने इसी रिश्तेदारी आधारित गठजोड़ पर रोक लगाने का प्रयास किया है। पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग ने स्पष्ट किया है कि सचिव और सरपंच के बीच खून का रिश्ता, वैवाहिक संबंध या निकट संबंध नहीं होना चाहिए। यदि चुनाव के बाद ऐसा संबंध बनता है तो 15 दिन के भीतर सचिव का तबादला किया जाएगा।

इस व्यवस्था का पहला प्रभाव जवाबदेही पर दिखाई दे सकता है। जब सचिव सरपंच का रिश्तेदार नहीं होगा तो किसी गलत निर्णय पर हस्ताक्षर करने से पहले अधिक सावधानी बरतेगा। पंचायत में चेक एंड बैलेंस की व्यवस्था मजबूत होगी। गरीब और जरूरतमंद व्यक्ति भी बिना राजनीतिक दबाव के अपनी समस्या सचिव तक पहुंचा सकेगा। जन्म प्रमाणपत्र, प्रधानमंत्री आवास योजना की किस्त और मनरेगा भुगतान जैसी सेवाओं में पारदर्शिता और समयबद्धता आने की संभावना बढ़ेगी। आरटीआई के तहत भी सचिव की जवाबदेही अधिक स्पष्ट होगी क्योंकि उसकी नौकरी किसी रिश्तेदारी नहीं, बल्कि उसके कार्य पर निर्भर होगी।

नई गाइडलाइन का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष महिला सशक्तिकरण है। पंचायत सचिव भर्ती में महिलाओं को विशेष वरीयता देने की बात कही गई है। मध्यप्रदेश में लगभग 50 प्रतिशत पंचायतों में महिला सरपंच हैं, लेकिन सचिव पदों पर पुरुषों का वर्चस्व है। कई स्थानों पर 'सरपंच पति' ही वास्तविक निर्णय लेते हैं। यदि सचिव पद पर अधिक महिलाएं आएंगी तो महिला सरपंचों को प्रशासनिक सहयोग मिलेगा और गांव की महिलाओं को भी अपनी समस्याएं रखने में सहजता होगी। विधवा पेंशन, लाड़ली लक्ष्मी और प्रसूति सहायता जैसी योजनाओं के क्रियान्वयन में संवेदनशीलता बढ़ सकती है। सरकार का लक्ष्य अगले दो वर्षों में 40 प्रतिशत सचिव पदों पर महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना है।

हालांकि केवल नियम बना देने से व्यवस्था नहीं बदलती। सबसे बड़ी चुनौती तबादला प्रक्रिया को निष्पक्ष बनाए रखने की होगी। यह सुनिश्चित करना होगा कि तबादले उद्योग का रूप न लें। इसके लिए पारदर्शी और यादृच्छिक सॉफ्टवेयर आधारित स्थानांतरण प्रणाली आवश्यक होगी। साथ ही केवल प्रत्यक्ष रिश्तेदारों तक सीमित रहने के बजाय आर्थिक साझेदारी और परोक्ष प्रभाव वाले संबंधों को भी नियमों के दायरे में लाना होगा।

महिला वरीयता के साथ गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण भी जरूरी है। कंप्यूटर संचालन, लेखांकन, जीईएम पोर्टल और डिजिटल प्रशासन की अनिवार्य ट्रेनिंग के बिना कोई भी सचिव प्रभावी ढंग से काम नहीं कर पाएगा। अन्यथा नई नियुक्तियां भी केवल औपचारिकता बनकर रह जाएंगी।

ग्रामीण शासन व्यवस्था को वास्तव में मजबूत करने के लिए तीन और कदम आवश्यक हैं। प्रत्येक पंचायत में नागरिक अधिकार पत्र प्रदर्शित किया जाए, जिसमें हर सेवा की समय-सीमा स्पष्ट हो। सभी भुगतान और योजनाओं को डिजिटल प्लेटफॉर्म से जोड़ा जाए, ताकि पारदर्शिता बढ़े और दलाली की गुंजाइश कम हो। साथ ही सामाजिक अंकेक्षण को प्रभावी बनाते हुए ग्राम सभा में प्रत्येक खर्च का सार्वजनिक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाए।

महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है। यदि गांव की व्यवस्था भाई-भतीजावाद में उलझ जाए तो लोकतंत्र कमजोर पड़ जाता है। पंचायत सचिव भर्ती की नई गाइडलाइन उसी लोकतंत्र को नई ऊर्जा देने की कोशिश है। सरपंच और सचिव का रिश्ता मालिक और अधीनस्थ का नहीं, बल्कि सहयोगी और जवाबदेह व्यवस्था का होना चाहिए। जब रिश्तेदारी की जगह जिम्मेदारी लेगी, तभी योजनाओं का लाभ सही व्यक्ति तक पहुंचेगा और ग्राम स्वराज की अवधारणा मजबूत होगी।

यह गाइडलाइन केवल तबादले का आदेश नहीं, बल्कि गांव की चौपाल पर लिखा गया एक नया प्रशासनिक सिद्धांत है। इसका पहला संदेश है कि पंचायत किसी परिवार की नहीं, जनता की है और दूसरा संदेश यह कि सचिव किसी व्यक्ति का नहीं, संविधान और कानून का प्रतिनिधि है। यदि यही भावना जमीन पर उतरी तो आने वाले वर्षों में मध्यप्रदेश की पंचायतें सुशासन और पारदर्शिता की नई मिसाल बन सकती हैं और विकसित भारत की कहानी वास्तव में गांव की चौपाल से लिखी जाएगी।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

'वन नेशन, वन टैक्स' का अधूरा सपना

राज्यों को आशंका है कि केंद्र भविष्य में राजस्व हानि की भरपाई नहीं करेगा, जबकि केंद्र को लगता है कि राज्य कर दरें कम करने को तैयार नहीं होंगे। इस अविश्वास की कीमत आम जनता हर लीटर ईंधन पर भारी कर चुकाकर दे रही है। विवाद की जड़ 5.2 लाख करोड़ रुपये का राजस्व है। वर्तमान में पेट्रोल-डीजल पर केंद्र उत्पाद शुल्क और राज्य वैट वसूलते हैं।

जीएसटी लागू हुए आठ वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन 'वन नेशन, वन टैक्स' का वादा आज भी अधूरा है। इसकी सबसे बड़ी वजह पेट्रोल और डीजल हैं। जब उपभोक्ता 102 रुपये प्रति लीटर पेट्रोल खरीदता है तो उसमें लगभग 58 रुपये विभिन्न करों के रूप में शामिल होते हैं, लेकिन यह कर जीएसटी के दायरे में नहीं आता। केंद्र चाहता है कि पेट्रोल-डीजल को जीएसटी में लाया जाए, जबकि राज्यों का स्पष्ट कहना है कि उनकी सहमति के बिना यह संभव नहीं है। यह सहमति इसलिए नहीं बन पा रही क्योंकि इसके पीछे लगभग 5.2 लाख करोड़ रुपये के राजस्व का प्रश्न जुड़ा है।

असल में पेट्रोल-डीजल पर जीएसटी का विवाद टैक्स से अधिक भरोसे का है। राज्यों को आशंका है कि केंद्र भविष्य में राजस्व हानि की भरपाई नहीं करेगा, जबकि केंद्र को लगता है कि राज्य कर दरें कम करने को तैयार नहीं होंगे। इस अविश्वास की कीमत आम जनता हर लीटर ईंधन पर भारी कर चुकाकर दे रही है।

विवाद की जड़ 5.2 लाख करोड़ रुपये का राजस्व है। वर्तमान में पेट्रोल-डीजल पर केंद्र उत्पाद शुल्क और राज्य वैट वसूलते हैं। वर्ष 2025-26 में केंद्र को उत्पाद शुल्क से लगभग 2.4 लाख करोड़ और राज्यों को वैट से लगभग 2.8 लाख करोड़ रुपये मिलने का अनुमान है। कई राज्यों की कुल कर आय का 25 से 30 प्रतिशत हिस्सा इसी स्रोत से आता है।

जीएसटी की अधिकतम दर 28 प्रतिशत है, जबकि महाराष्ट्र, राजस्थान और आंध्र प्रदेश जैसे कई राज्य पेट्रोल पर 30 से 35 प्रतिशत तक वैट और सेस वसूलते हैं। यदि पेट्रोल-डीजल जीएसटी के दायरे में आते हैं तो कर की अधिकतम सीमा 28 प्रतिशत रह जाएगी, जिससे राज्यों को भारी राजस्व हानि का सामना करना पड़ सकता है। स्वाभाविक है कि कोई भी राज्य सरकार अपने प्रमुख आय स्रोत को आसानी से छोड़ना नहीं चाहेगी।

केंद्र का तर्क है कि जीएसटी लागू होने से पेट्रोल 10 से 12 रुपये प्रति लीटर तक सस्ता हो सकता है। परिवहन लागत घटेगी तो सब्जी, दूध, दाल और अन्य आवश्यक वस्तुओं की कीमतों पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। दूसरी ओर राज्यों का सवाल है कि यदि यह आय कम हो गई तो स्कूल, अस्पताल और अन्य विकास कार्यों का खर्च कैसे चलेगा।

राज्यों की आपत्तियों के पीछे तीन प्रमुख कारण हैं। पहला, वित्तीय स्वायत्तता का प्रश्न। शराब और पेट्रोल-डीजल ही ऐसे प्रमुख क्षेत्र बचे हैं जिन पर राज्य अपनी आवश्यकता के अनुसार कर तय कर सकते हैं। दूसरा, मुआवजे को लेकर भरोसे का संकट। जीएसटी लागू करते समय पांच वर्ष तक राजस्व हानि की भरपाई का वादा किया गया था, लेकिन जून 2022 के बाद यह व्यवस्था समाप्त हो गई, जिससे कई राज्यों की वित्तीय स्थिति प्रभावित हुई। तीसरा, चुनावी और सामाजिक योजनाओं के लिए पेट्रोल-डीजल से मिलने वाला लचीला राजस्व, जिसे राज्य अपनी प्राथमिकताओं के अनुसार खर्च कर सकते हैं।

यदि पेट्रोल 10 रुपये प्रति लीटर सस्ता हो जाए तो औसतन 40 लीटर मासिक खपत वाले परिवार को लगभग 400 रुपये की राहत मिल सकती है। देशभर में यह राहत करीब 1.4 लाख करोड़ रुपये तक पहुंच सकती है। लेकिन दूसरी ओर राज्यों को लगभग 1.6 लाख करोड़ रुपये के राजस्व नुकसान की आशंका है। इसकी भरपाई या तो कर्ज लेकर करनी होगी या फिर विकास कार्यों के बजट में कटौती करके। ऐसे में आज की बचत भविष्य में अन्य रूपों में जनता पर अतिरिक्त बोझ बन सकती है।

इस पूरे विषय का एक महत्वपूर्ण पहलू इनपुट टैक्स क्रेडिट भी है। वर्तमान व्यवस्था में परिवहन क्षेत्र, किसान और उद्योगों को डीजल पर इनपुट टैक्स क्रेडिट नहीं मिलता। यदि पेट्रोल-डीजल जीएसटी में शामिल होते हैं तो यह सुविधा उपलब्ध हो सकती है, जिससे माल ढुलाई की लागत 3 से 5 प्रतिशत तक कम होने और महंगाई पर दीर्घकालिक नियंत्रण की संभावना बन सकती है। हालांकि यह लाभ तभी टिकाऊ होगा जब राज्यों द्वारा इसकी भरपाई के लिए नए सेस न लगाए जाएं।

केंद्र के लिए यह महंगाई कम करने और पूरे देश में समान कर व्यवस्था लागू करने का अवसर है, जबकि राज्यों के लिए यह वित्तीय स्वायत्तता का प्रश्न है। दोनों पक्षों के बीच टकराव का समाधान संतुलित व्यवस्था से ही निकल सकता है।

इसके लिए तीन व्यावहारिक विकल्प सामने आते हैं। पहला, पेट्रोल-डीजल को 28 प्रतिशत जीएसटी में शामिल करते हुए राज्यों को सीमित अवधि के लिए राजस्व सुरक्षा सेस लगाने की अनुमति दी जाए। दूसरा, 20 से 28 प्रतिशत के बीच फ्लोटिंग टैक्स बैंड बनाया जाए, ताकि राज्य अपनी परिस्थितियों के अनुसार कर दर तय कर सकें। तीसरा, पहले डीजल को जीएसटी के दायरे में लाया जाए, क्योंकि उसका सीधा प्रभाव खेती और माल ढुलाई पर पड़ता है, और बाद में चरणबद्ध तरीके से पेट्रोल को शामिल किया जाए।

वास्तविकता यह है कि पेट्रोल-डीजल पर जीएसटी का मुद्दा केवल कर व्यवस्था का नहीं, बल्कि विश्वास का संकट है। राज्यों को भरोसा चाहिए कि उनकी आय सुरक्षित रहेगी और केंद्र चाहता है कि कर व्यवस्था सरल बने। जीएसटी परिषद को अब केवल 'हां' या 'ना' से आगे बढ़कर 'कैसे' और 'कब' पर निर्णय लेना होगा। यदि केंद्र लिखित रूप से पांच वर्षों तक 100 प्रतिशत राजस्व हानि की भरपाई का आश्वासन दे और राज्यों को सीमित सेस लगाने की छूट मिले, तो सहमति का रास्ता निकल सकता है। अन्यथा 'वन नेशन, वन टैक्स' का नारा केवल बोर्डों तक सीमित रहेगा और आम नागरिक पेट्रोल पंप पर भी कर देगा तथा टूटी सड़कों पर वाहन की मरम्मत कराते समय भी उसकी कीमत चुकाता रहेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)